चरक सहिंता एवं सुश्रुत सहिंता में द्रव्यों का कर्मात्मक वर्गीकरण

ललित नागर
शोध कर्ता
द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद संकाय,
चिकित्सा विज्ञान संस्थान
काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

चरक आर सुश्रुत दोनो ने द्रव्यों का कर्मानुसार वर्गीकरण किया है। यद्यपि इन दोनो में आयाततः कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है। किन्तु मूलतः कोई भेद नही है चरक ने वर्गों का नाम कर्मो के अनुसार रखा है तो सुश्रुत ने मुख्य द्रव्य के अनुसार। जिस प्रकार एक पुरुष अनेक कर्मो का सम्पादन करता है तथा उन उन कर्मो के अनुसार उसकी अनेक गौण संज्ञाये होती है उसी प्रकार एक औषधद्रव्य के भी अनेक कर्म होते है और वह अपने विविध कर्मो के अनुसार विभिन्न गणो में स्थान पाता है। चरकसहिंता सूत्रस्थान का प्रारंभ भेषजचतुष्क से हुआ है इसके अन्तिम (चतुर्थ) अध्याय में 50 महाकषायों का उल्लेख किया गया है। प्रत्येक गण में दस द्रव्य है जिन्हे कषाय की संज्ञा दी गई है। किन्तु साथ ही आचार्य ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह संज्ञा सीमित नही है प्रत्युत उदाहरणार्थ है जिसके आधार पर अनेक तत्सम द्रव्यों का समावेश उन वर्गो में किया जा सकता है। सुश्रुत के गणो को ध्यानपूर्वक देखने पर एक महत्वपूर्ण बात विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक गण के एक छोड़कर सभी द्रव्य एकप्रवाह में गिनाकर तथा उस श्रृखला के अंतिम द्रव्य को बहु वचन का रूप लगाकर अन्त में छोड़े हुए द्रव्य के साथ चेति (च इति) जोड़कर उसे अलग से कहा गया है यथा पिप्पल्यादि गण के प्रंसग में पिप्पली से विंडग तक के द्रव्य एक प्रवाह में गिनाने तथा विंडग के बहुवचनी रूप में विंडगानि से उस प्रवाह का अन्त करने के पश्चात छोड़े हुए कटुरोहिणी को चेति के साथ अलगकिया गया।

परिचय

आयुर्वेद की प्राचीन सहिताओं में द्रव्यों का कर्मानुसार वर्गीकरण अत्यन्त विशद और वैज्ञानिक रूप में मिलता है। शरीर के प्रत्येक संस्थान पर होने वाले कर्मो का अध्ययन कर उनके अनुसार द्रव्यों का विभिन्न वर्गो में विभक्त किया गया है। चरक[1] आर सुश्रुत[2] दोनो ने द्रव्यों का कर्मानुसार वर्गीकरण किया है। यद्यपि इन दोनो में आयाततः कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है। किन्तु मूलतः कोई भेद नही है चरक ने वर्गों का नाम कर्मो के अनुसार रखा है तो सुश्रुत ने मुख्य द्रव्य के अनुसार यथा जीवनीय कर्म करने वाले द्रव्यों के वर्ग का नाम चरक ने कर्म के अनुसार जीवनीय दिया और सुश्रुत ने मुख्य द्रव्य काकोली के अनुसार उसे काकोल्यादि कहा।

संहिताओं में एक औषधद्रव्य के विभिन्न कर्मो को अध्ययन तो किया ही गया विभिन्न औषधद्रव्यों को किसी सामान्य कर्म के आधार पर एक वर्ग में भी व्यवस्थित किया गयाः क्योंकि कोई एक द्रव्य ऐसा मिलना कठिन है जो अकेले सब कर्मो के सम्पाद में समर्थ हो। अतः अनके कर्मो के लिए भिन्न भिन्न औषधिओं को प्रयोग करना पड़ता है इस प्रकार व्यस्त और समस्त अनुलोम और प्रतिलोम दोनो विधियों से द्रव्यों के गुण कर्म का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है।

जिस प्रकार एक पुरुष अनेक कर्मो का सम्पादन करता है तथा उन उन कर्मो के अनुसार उसकी अनेक गौण संज्ञाये होती है उसी प्रकार एक औषधद्रव्य के भी अनेक कर्म होते है और वह अपने विविध कर्मो के अनुसार विभिन्न गणो में स्थान पाता है। चरकोक्त महाकषाय औषधद्रव्यों का प्राचीनतम वर्गीकरण है जो कर्मानुसार निर्धारित है इसी प्रकार विभानस्थान[3] में रसो के अनुसार 6 स्कन्धों में द्रव्यों का विवरण है अन्य भी अनके गण बीच–बीच में मिलते है ध्यान देने से पता चलेगा कि परवर्ती आचार्यो के वर्गीकरण का मूल आधार चरकोक्त वर्गीकरण है ।

चरकोक्त महाकषायों का वर्गीकरण

चरकसहिंता सूत्रस्थान का प्रारंभ भेषजचतुष्क से हुआ है इसके अन्तिम (चतुर्थ) अध्याय में 50 महाकषायों का उल्लेख किया गया है। यह वस्तुता द्रव्यों का कर्मानुसार वर्गीकरण है समान गुण एंव कर्म वाले भेषजद्रव्यों को एक वर्ग में रखा गया है। प्रत्येक गण में दस द्रव्य है जिन्हे कषाय की संज्ञा दी गई है। किन्तु साथ ही आचार्य ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह संज्ञा सीमित नही है प्रत्युत उदाहरणार्थ है जिसके आधार पर अनेक तत्सम द्रव्यों का समावेश उन वर्गो में किया जा सकता है। यहा आचार्य ने यह भी बतलाया है कि भेषज द्रव्यों का एक रुप में तथा यौगिक रुप में आवश्कतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। एकल तथा यौगिक प्रयोगो के लिए क्रमशः कषाय तथा महाकषाय पदो का प्रयोग किया गया है अनेक समान गुणकर्मयुक्त द्रव्यों को एक साथ मिलाकर किस प्रकार योगों की कल्पना की जा सकती है यहाँ बतलाने के लिए उदाहरणार्थ महाकषायो का निरुपण किया गया है इस प्रकार महाकषाय एक कार्यसंपादक अनेक द्रव्यों का समुच्चय है। वस्तुतः दस (10) संख्या दिशानिर्देश के लिए प्रयुक्त है। प्राचीन वाडमय में किसी विषय का प्रतिपादन करने के बाद अन्त में इति दिक् लिखने की परम्परा रही है उसका अभिप्राय भी यही है कि इतना दिशानिर्देश के लिए पर्याप्त है।

उदाहरण के लिए जीवनीय गण में जीवक ऋषभक आदि द्रव्य स्निग्ध शीत मधुर गुणयुक्त है अत इस आधार पर इन गुणों से युक्त द्रव्य (द्राक्षा विदारी दुग्ध आदि) भी इस गण में स्थान पाने योग्य है। चक्रपाणि ने अपनी टीका में इस तथ्य का विवेचन किया है इसी प्रकार नवीन कर्मो के आधार पर नये कषायो एवं महाकषायों की भी कल्पना की जा सकती है। चक्रपाणि ने अतिसारहर महाकषाय की कल्पना की है[4]। चरक ने स्पष्ट रुप से कहा है पंचाशत महाकषायों का उल्लेख अनतिसंक्षेप विस्तार शैली के कारण जिसका अभिप्राय इतना ही है कि मन्दबुद्धि जन चाहे तो इतने ही से व्यवहार कर सफलता प्राप्त कर सकते है और बुद्धिमान विद्वद्वर्ग इसे और विकसित कर ज्ञान एंव अनुसधान मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

चरक ने इन पचास महाकषायों को यो ही न लिखकर पुनः कयानुसार इनके वर्ग निर्धारित किये है जो इस प्रकार है। जीवनीय बृहणीय आदि (6), बल्य वर्ण्य आदि (4), तृप्तिघ्न अर्शोघ्न आदि (6), स्तन्यजनन स्तन्यशोधन आदि (4), स्नेहोपग स्वेदोपग आदि (7), छर्दिनिग्रहण तृष्णानिग्रहण आदि (3), पुरीषसग्रहणीय पुरीषविरजनीय आदि (5), कासहर श्वासहर आदि (5), दाहप्रशमन शीतप्रशमन आदि (5), शोणितस्थापन वेदनास्थापन आदि (5)।

प्रस्तुत लेख में विशेष रुप से विचारणीय प्रश्न यह है कि महाकषायों को पुनः उपर्युक्त दस वर्गो में व्यवस्थित करने का आधार क्या है। पहली बात तो यह हो सकती है जैसे महाकषायो में द्रव्यों की दस संख्या दिशानिर्देशार्थ है उसी प्रकार इन वर्गो की दस संख्या भी दिड़मात्र निर्देश मानी जा सकती है इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ऐसे अन्य भी वर्ग बनाए जा सकते है जिनके अनुसार इन महाकषायों की व्यवस्था की जाय।

यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त प्रत्येक वर्ग में निर्दिष्ट पदो की रचना शैली विशिष्ट है यथा—प्रथम वर्ग मे सभी पद ईय प्रत्यान्त है जीवनीय बृहणीय आदि। इसी प्रकार द्वितीय वर्ग में सभी पद य प्रत्यान्त बल्य, वर्ण्य आदि। चक्रपाणि ने इस वैशिष्टय को देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि शब्दवैचित्य के द्वारा ग्रन्थ को पुष्कलाभिधान बनाना हो इसका उदेश्य है यद्यपि विशिष्ट अर्थ की और भी उनका संकेत है। संभतः वह उसके मूल तक नही पहुँच सके।

किन्तु शब्द वैचिन्य दिखलाने के जिए ही आचार्य चरक ने यह सभारम्भ रचा है यह बात हदयगम नही होती वस्तुतः इसके पीछे विशिष्ट अर्थ भी होना चाहिए। इसी अर्थ पर विचार करना है। इस दृष्टि से अब प्रत्येक वर्ग की क्रमशः परीक्षा सकते है।

(1) **प्रथम वर्ग** में छः महाकषाय है जीवनीय बृहणीय भेदनीय सन्धानीय और दीपनीय। ये सभी पद कर्मपरक है और इस प्रकार ये महाकषाय क्रमशः जीवन बृहण लेखन भेदन संधान तथा दीपन कर्मो के साधक है। इस आधार पर कर्मपरक अन्य महाकषायों की कल्पना भी की जा सकती है तथा पाचनीय स्तम्भनीय आदि।

(2) **द्वितीय वर्ग** में चार महाकषाय है– वल्य वर्ण्य कण्ठय और हद्य। इनमें दो शरीर के भाव है और शरीर के अवयव है इस प्रकार शरीर के विशिष्ट अवयवों तथा भावो के लिए उपयोगी कर्मो का इस वर्ग में निर्देश है। सूक्ष्मता से देखे तो इस वर्ग के दो विभाग हो सकते है। (क) बल्य वर्ण्य (शरीर भाव), (ख) कण्ठय हद्य (शरीरावयव)। पहले विभाग में वृष्य मेध्य आदि तथा दूसरे विभाग में शीर्षय, त्वच्य आदि महाकषायों की कल्पना की जा सकती है

(3) **तृतीय वर्ग** में तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, कुष्ठघ्न, कण्डुघ्न, क्रिमिघ्न और विषघ्न ये छः महाकषाय है यह वर्ग वस्तुत त्रिविध रोगमार्ग से सम्बन्धित है। सूक्ष्मता से देखे तीनों रोगमार्गो के अनुसार इसे भी तीन विभागों में बाट सकते है। (क) तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न (अभ्यान्तर रोगमार्ग श्रेष्ठ), (ख) कुष्ठघ्न, कण्डुघ्न (बाह्य रोगमार्ग रक्तादि धातु त्वक), (ग) क्रिमिघ्न विषघ्न (मध्यम रोगमार्ग मर्म, अस्थि संधि)। तृप्ति कफज एवं आमजविकार है जिसका सम्बन्ध अमाशय से है अर्श गुदमत इस प्रकार महास्त्रोत के आदि तथा अंतिम भाग में स्थित विकारों का उल्लेख करने से समस्त महास्त्रोत का ग्रहण हो जाता है। द्वितीय विभाग में कुष्ठ और कण्डु को नष्ट करने वाले भेषजद्रव्य आते है ये विकार रक्तादि धातुओं तथा त्वचा में आश्रित होते है विष मर्मस्थानों पर आक्रमण करते है जिससे मृत्यु होती है ये संधिशैथिल्य भी उत्पन्न करते है (विकासी) क्रिमि भी अस्थियों आदि का भक्षण करते है तथा मर्मस्थानों का आक्रान्त करते है इसी प्रकार इन रोगमार्गो से सम्बद्ध अन्यकर्मो एवं तत्परक महाकषायो की कल्पना की जा सकती है।

(4) **चतुर्थ वर्ग** में स्तन्य और शुक्र से सम्बद्ध कर्म है स्तन्यजनन स्तन्यशोधन शुक्रजनन तथा शुक्रशोधन, उनका क्षय होने पर जनन और अन्य दुष्टि होने पर शोधन द्रव्यों का प्रयोग होता है यह वर्ग वस्तुतः धातुओं और अधातुओ से सम्बद्ध है जिसके प्रतिनिधि यहाँ क्रमशः शुक्र एवं स्तन्य है शुक्र एवं स्तन्य का साथ–साथ उल्लेख करने का कारण एक तो यह है कि दोनों पुरुष की उत्पत्ती और विकास में महत्वपूर्ण साधन है और दूसरा यह कि दोनो के स्वतः उत्पत्ती विकास तथा निर्गम में घनिष्ठ समानता है इसी प्रकार आर्तवजनन आर्तवशोधन, रक्त रक्तशोधन आदि महाकषायों की कल्पना की जा सकती है।

(5) **पंचमवर्ग** में पंचकर्म से संबधित महाकषाय है। इनमें दो पूर्वकर्म के है स्नेहोपग तथा स्वेदोपग जो क्रमशः स्नेहन कर्मो में उपयोगी होते है। शेष पाँच वमनोपग विरंचनोपग आस्थपनोपग अनुवासनोपग तथा शिरोविरेचनोपग प्रधान कर्मो से सबंधित है।

(6) **पष्ठ वर्ग** में तीन ही महाकषाय है छर्दिनिग्रहण तृष्णानिग्रहण तथा हिक्कानिग्रहण छर्दि तृष्णा और हिक्का मुख्यतः उदानवायु के विकार है और इनके वेग आते है। इनके केन्द्र मस्तिष्क में स्थित है जिनके क्षोभ से इन वेगो का उदीरण होता है। ऐसे वेगयुक्त विकारों को रोकने के लिए निग्रहण शब्द का प्रयोग हुआ है। संग्रहण शब्द बिल्कुल न रोक, मात्रा में कमी करने का घोतक है यही निग्रहण और सग्रहण में अन्तर है बिल्कुल रोक देना निग्रहण और कमी ला देना संग्रहण है।

(7) **सप्तम वर्ग** में मलों सें संबधित कर्म है पुरीष और मुत्र प्रमुख मल है। इनके सन्दर्भ में पाँच महाकषायों का निर्देश है पुरीषसंग्रहणीय पुरीषविरजनीय मुत्रसंग्रहणीय मुत्रविरजनीय और मूत्रविरेचनीय। विरेचन का अन्यत्र उल्लेख होने का कारण यहा पूरीषविरेचनीय छोड़ दिया इसी प्रकार स्वेदन का भी अन्यत्र (च0 सू014) उल्लेख होने के कारण स्वेद संबधी कर्मो का उल्लेख यहाँ नही किया।

(8) **अष्टम वर्ग** में पाँच महाकषाय है कासहर श्वासहर शोथहर ज्वरहर और श्रमहर यह सामान्य विकारो का वर्ग है इसमें विभिन्न स्त्रोतो में होने वाले तथा सर्वांग एवं एकांग विकारों का समावेश है। उपर्युक्त पाँचों में से कास, श्वास प्राणवहस्त्रोतो के विकार ज्वर और श्रम सर्वांग विकार है तथा शोथ सर्वांग और एकांग दोनो है इसी प्रकार प्रेमहहर यक्ष्माहर आदि महाकषायों की कल्पना की जा सकती है।

(9) **नवम वर्ग** में पाँच महाकषाय है दाहप्रशमन शीतप्रशमन उदर्दप्रशमन अंगमर्दप्रशमन और शूलप्रशमन। ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट होगा कि ये सभी लक्षण है अतः लाक्षणिक व्यथा का शमन करने वाले कर्म इसमें समाविष्ट है। उदर्द यहाँ पर शीतपित्त का भेद नही है अपितु

महरोगाध्याय में पठित एक वातविकार है। जिसमें सम्भवतः अंगो में विशेष पीड़ा होती है। (उत्कृष्टः अर्दः पीड़ा यस्मिन स उदर्दः) इसी प्रकार प्रलापप्रशमन अनिद्राप्रशमन आदि महाकषायों की कल्पना की जाती है।

(10) **दशम वर्ग** में भी पाँच महाकषाय है– शोणितस्थापन वेदनास्थापन संज्ञास्थापन प्रजास्थापन और वयस्थापन। स्थापन का अर्थ है उसे प्राकृत स्थिति में बनाये रखना और यदि इस स्थिति से विचलित हो तो पुनः प्राकृत स्थिति में ले आना उपर्युक्त पाँच महाकषायों में शोणित वेदना संज्ञा प्रजा और वयस इन पाँच शरीर भावों के संदर्भ में स्थापन का प्रयोग हुआ है। ये पाँचों भाव ऐसे है जो निमित्त कारणो से प्राकृत स्थिति से विचलित हो जाते है आधात लगने से रक्त निकलने लगता है। अनेक कारणों से संज्ञा नष्ट हो जाति है इस आधार पर गर्भस्थापन आदि महाकषायों की कल्पना की जा सकती है।

अब इस विवरण के बाद पुनः व्याकरण की दृष्टि से प्रत्ययो और धातुओ के प्रयोग पर विचार करे। प्रथम और द्वितीय वर्गो में क्रमशः ईय तथा य प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है जो हितकर अर्थ में है यथा जीवन कर्म के लिए हितकर जीवनीय बल के हितकर बल्य आदि।

उपग शब्द सहायक के अर्थ में है यथा स्नेहोपग का अर्थ स्नेहकर्म में सहायक मात्रात्मक क्षयज विकृतियों में जनन तथा गुणात्मक विकृतियों में शोधन का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार विरेचनीय मल को बाहर निकाल कर आशय को रिक्त करने के अर्थ में है निग्रहण बिल्कुल रोकदेना तथा सग्रहणीय मात्रा में कमी लाने का द्योतक है संग्रहणीय के लिए संग्राहक शब्द का भी प्रयोग हुआ है। आजकल इसी अर्थ में स्तम्भन शब्द का प्रयोग होता है यद्यपि उसका प्राचीन मूल अर्थ भिन्न है। विरजनीय शब्द पुरीष तथा मुत्र में विद्यमान विविध रोगों (वर्ण विकारों) को दूर करने के अर्थ में है। स्थापन शब्द शरीर भावो को प्राकृत स्थिति में रखने तथा विचलित होने पर उनको रोक कर पुनः स्थिति में लाने का द्योतक है।

लक्षणों को शांत करने के लिए प्रशमन तथा रोगो को दूर करने के लिए घ्न या हर का प्रयोग हुआ है यथा अर्शोघ्न कासहर आदि है और घ्न और हर में भी सूक्ष्म भेद करे तो घ्न और हर की अपेक्षा अधिक उग्रता का घोतक है आंगिक विकृतियों (यथा अर्श) जन्तुओं (यथा कृमि) आदि को नष्ट करने तथा विष के प्रभाव को नष्ट करने के लिए घ्न का प्रयोग हुआ। सामान्यतः व्याधियों को दूर करने के लिए हर का प्रयोग होता है।

सुश्रुतोक्त गणों का वर्णन

सुश्रुत ने प्रयोगपरत्वे दोष कर्म के अनुसार सूत्रस्थान के 38 वे द्रव्य संग्रहणीय अध्याय में औषधिद्रव्यों के सैंतीस गण बताये है। अध्याय के प्रांरम्भ में ही समासेन सप्तत्रिशद द्रव्य गण भवन्ति कहकर वे सैंतीस गण वर्णित करते है। दोषो का बलाबल ज्ञात कर विकारो का निदान कर तद् हेतु बुद्धिपूर्वक विचार कर गणोक्त इन द्रव्यो का लेप क्वाथ तैल सर्पि पानक आदि के रूप में प्रयोग करने हेतु कहते है दोषो के भेदो को ज्ञात कर गणो के द्रव्यों को लेप पृथक–पृथक एक से अधिक द्रव्यों की योजना कर समस्त गण या अन्य गण की औषधियों के साथ सयुंक्त प्रभुक्त किय जाने हेतु वे उपदेश करते है किन्तु सैंतीस गणो के विवेचनोपरान्त वे पुनः इस सैंतीस संख्या को समासेन कहकर आवश्यकता के अनुसार (चिकित्सा प्रयोजनानुसार) इसका विस्तार अर्थात सैंतीस से भी अधिक गण बनाये जाने की शक्यता का संकेत करते है।

सुश्रुत के गणो को ध्यानपूर्वक देखने पर एक महत्वपूर्ण बात विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक गण के एक छोड़कर सभी द्रव्य एकप्रवाह में गिनाकर तथा उस श्रृखला के अंतिम द्रव्य को बहु वचन का रूप लगाकर अन्त में छोड़े हुए द्रव्य के साथ चेति (च इति) जोड़कर उसे अलग से कहा गया है यथा पिप्पल्यादि गण के प्रंसग में पिप्पली से विंडग तक के द्रव्य एक प्रवाह में गिनाने तथा विंडग के बहुवचनी रूप में विंडगानि से उस प्रवाह का अन्त करने के पश्चात छोड़े हुए कटुरोहिणी को चेति के साथ अलगकिया गया। यही बात अन्य गणों के साथ भी देखी जा सकती है। सुश्रुत संहिता के डल्हण आदि टीकाकारों ने इस बात को स्पष्ट नही किया है इस प्रकार एक द्रव्य को अलग–अलग करने की प्रक्रिया से क्या अर्थ निकला जायें यह

एक विचार्य विषय है एक अर्थ का हो सकता है त्रप्वादि गण के प्रसंग में यह बात कुछ होती भी है। उस गण में तपु सीस ताम्र रजत सुवर्ण कृष्णालोह इन षड्धातुओ को एक प्रवाह में वर्णित करने के पश्चात् श्रृंखला का अन्त कृष्णालोह के बहुवचनी रुप कृष्णलोहीन से किया गया और तत्पश्चात लोहमल को श्रृखला से हटाकर अलग से गिनाया गया। इस प्रक्रिया का दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि उस द्रव्य को अन्य द्रव्यों से विशेष था श्रेष्ठ माना जाये।

एक अर्थ यह भी हो सकता है कि वह द्रव्य असामान्य रूप से अर्थात विचिता प्रत्ययारब्ध (प्रभाव) से कार्य शील हो अतः किसी गण में उस द्रव्य का कार्यकारणभाव समझ से परे होने के कारण उसे अलग रखा गया हो। सभी गणों के अध्ययन के उपरान्त ऐसा प्रतीत होता है कि गौण द्रव्य को ही अलग रखा गया है तथा प्रमुख द्रव्य को गण के आदि में रखा गया है। गण का नामकरण भी प्रमुख द्रव्य के नाम पर ही किया गया है। फिर भी इस विषय पर और भी चिन्तन अपेक्षित है।

सुश्रुतोक्तगण एंव चरकोक्ता महाकषाय में साधर्म्य

(1) विदारिगन्धादि गण—चरकोक्त महाकषायों का अध्ययन करने से भी सुश्रुत के इस वचन की पुष्टि होती है। इस गण में चरकोक्त जीवनीय महाकषाय के चार द्रव्य बल्य महाकषाय के पाँच द्रव्य शुक्रजनन महाकषाय के पाँच द्रव्य कण्ठय, कासहर, हिक्कानिग्रहण, अंगमर्दप्रशमन महाकषाय के द्रव्य आये है। इस प्रकार चरकानुमत से इन गण के द्रव्यों के जीवनीय, बल्य, वृष्य, कण्ठय, हिक्काहर, कासहर तथा अंगमर्दप्रशमन कर्मो की सिद्धि होती है। इस गण के प्रायः द्रव्य मधुररस मधुरविपाकी स्निग्ध एंव शीतवीर्य है इन गुणो से युक्त द्रव्यों के कारण यह गण पित्तशामक रक्तशोधक शोथहर जीवनीय बल्य एवं वृष्य है। सम्पूर्ण लघुपंचमूल एवं एरण्ड के समावेश के कारण उसके वातपित्तशामक कास श्वास हिक्का प्रशमन कण्ठय गुल्महर एवं अंगमर्दप्रशमन ये कर्म भी इसमें आ गये है।

(2) आरग्वधादि गण—चरक के महाकषाय से तुलना करने पर विदित होता है इसके द्रव्य कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन महाकषाय में आये है। इन गण के अधिकांश द्रव्य तिक्त कषायरस युक्त है। अतः यह गण कफपित्तशामक ज्वरघ्न, रक्तशोधक, स्तन्यशोधक, त्वगविकार नाशक, प्रमेघ्न है।

(3) सालसारदिगण—चरक के महाकषाय से तुलना करने पर विदित होता है कि इस गण के द्रव्य विषघ्न, कुष्ठघ्न, कण्डुघ्न, उदर्दप्रशमन महाकषाय में आए है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के त्वक् विकारो की चिकित्सा हेतु यह गण उपयुक्त प्रतीत होता है। इस गण के द्रव्यों की तिक्त कषायरस प्रायता इस गण को कफघ्न प्रमेहघ्न, मेदोहर, एवं पाण्डूरोगनाशक बनाये हुए है।

(4) वरुणादि गण—इसके अलावा विसर्प में भी बहिरन्तपरिमार्जन हेतु इस गण के द्रव्यों का प्रयोग का उपदेश सुश्रुत ने किया है[5]। चरकोक्त महाकषायो से तुलना करने पर दृष्टिगोचर होता है कि इस गण के द्रव्य चरक के लेखनीय, भेदनीय, श्वयथुहर आदि महाकषायों में आए है इस गण के अधिंकाश द्रव्य तिक्त कटुरसप्राय उष्णवीर्य होने से यह गण कफशामक है लेखनीय द्रव्य मेदोहर एंव भेदनीय द्रव्य गुल्महर होते है।

(5) वीरतर्वादि गण—इस गण के 9 द्रव्य चरक के मूत्रविरेचनीय महाकषाय में आये है तथा इस गण के द्रव्य श्व्यथूहर महाकषाय में भी आए है इस गण के द्रव्य उष्णवीर्य मूत्रल अतः इस गण को अपानवातविकारनुत उनमें भी मुत्रवहस्त्रोतोगत वातविकारो के नाशक के रुप में प्रयुक्त किया जा सकता है। कुछ शोथहर द्रव्य भी इस गण में होने से मुत्रवह स्त्रोतोगत शोथप्रधान रोगो में यह उपयुक्त है।

(6) रोध्रादिमण—चरकोक्त महाकषायो के अध्ययन से विदित होता है कि सुश्रुतोक्त रोध्रादि गण के द्रव्य सन्धानीय, शुक्रशोधन, पुरीषसंग्रहणीय, वेदनास्थापन आदि महाकषायों में आये हुए है इस गण के प्रायः द्रव्य कषायरस शीतवीर्य होंने से कफपित्तशामक स्तम्भन एवं विभिन्न योनिविकारों में स्त्रावशोषक के रूप में प्रयुक्त होते है। इन गुणो से यह रक्त शोधक अतः वर्ण्य भी है।

(7) अर्कादि गण–इस गण के द्रव्य तिक्तरसप्रायः एंव उष्णवीर्य होनें से उपयुक्त कर्मो का सम्पादन करते है। चरकोक्त महाकषाय के अध्ययन से विदित होता है कि इस गण के द्रव्य चरक के विषघ्न कुष्ठघ्न महाकषाय में वर्णित है तिक्तरस एवं उष्णवीर्यत्व ने इस गण को कफमेदोहर बनाया है।

(8) सुरसदि गण–अन्नपान विधि अध्याय[6] में आहारोपयोगी द्रव्यों के प्रंसग में सुश्रुत ने इस गण के द्रव्यो को दोहराया है। वहाँ इन द्रव्यो को उन्होने कटुरस उष्णवीर्य वातश्लेष्महर बताया है चरक ने भी इन द्रव्यों को रक्तपित्तकर[7] कहा है जो इन द्रव्यो के कटुरस एवं उष्णवीर्यत्व को दर्शाति है इस गण के प्रायः द्रव्य चरक के कृमिघ्न विषघ्न श्वासहर शूलप्रशमन आदि महाकषायों में आये है इस गण के द्रव्य कटुरस उष्णवीर्यत्व के कारण कफघ्न तथा श्वास कास प्रतिश्याय कृमि अरुचि आदि शलेष्मज विकारो में उपयुक्त है इन विकारो हेंतु सरसादि गण के द्रव्यो का लोक में भी काफी प्रचलन है।

(9) मुष्ककादि गण–यह क्षार वृक्षो का गण है। इस गण के प्रायः द्रव्य सुश्रुतोक्त क्षारपाक विधि अध्याय में क्षारनिर्माण हेंतु उपयुक्त द्रव्यों की सूची[8] मे आये हुए है। सुश्रुत ने क्षार का आभ्यन्तर प्रयोग (पानीय) अश्मरी, शर्करा, कृमि, अर्श, अभ्यान्तर विद्रधि आदि हेंतु तथा बाह्य प्रयोग (प्रतिसारणीय) अर्श, अर्बुद, दुष्ट, व्रण, नाड़ी, चर्मकील, मशक, बाह्य विद्रधि आदि हेतु वर्णित किया है इस गण के प्रायः द्रव्य कषायरस प्रधान कफपित्तशामक एंव लेखन होने से शुक्रदोष मेह मेदोवृद्धि एवं पाण्डु में भी उपयुक्त है इस गण के द्रव्य चरकोक्त अर्शोघ्न महाकषाय में आए है।

(10) पिप्पल्यादि गण–इस गण के प्रायः चरक के लेखनीय दीपनीय तुप्तिघ्न क्रिमिघ्न स्तन्य शोधन शूल प्रशमन आदि महाकषायो में आये हुए है। ये द्रव्य के कटु तिक्तरस युक्त एंव प्राय उष्णवीर्य है इन गुणो के कारण यह गण कफ एंव वात का शमन कर सम्बन्धित विकारो का नाश करता है। जाठराग्निदौर्बल्य में कटुरसत्व एंव उष्णवीर्यत्व से ये द्रव्य साक्षात दीपन करते है कफ के कारण उत्पन्न मंदाग्नि में ये द्रव्य कफ का शमन कर उसके आवरण को हटाकर अग्निदीपन कराते है इस गण के द्रव्य वात का शमन एवं अनुलोमन कर शूल एवं गुल्म में लाभकर होते है।

(11) एलादि गण–सुश्रुत ने इस गण को सुगंधी द्रव्यो का गण बताया है। वातव्याधि चिकित्सा अध्याय में सुश्रुत ने गंध द्रव्यो को वातहर बताया है इस गण के प्रायः द्रव्य चरक के वर्ण्य कण्डुघ्न विषघ्न शुक्रशोधन श्वासहर शीत प्रशमन संज्ञास्थापन आदि महाकषायों में आए हुए है। इस गण के प्रायः द्रव्य कटु तिक्तरसयुक्त एंव उष्णवीर्य हाने से यह गण कफवातशामक है उशीर, प्रियंगू, एलादि शीतवीर्य तथा देवदारू, कुंकुमादि तिक्त कषाय द्रव्यों के कारण इस गण में पित्तशमनत्व भी आया है पित्तशामक द्रव्य साथ–साथ रक्तप्रसादक भी होते है इस प्रकार यह गण कण्डू कोठ वर्णविकृति विषविकारो में लाभकर है।

(12–13) वचादि एंव हरिद्रादि गण–इन गणो के द्रव्य चरक के लेखनीय स्तन्यशोधन अर्शोघ्न आदि महाकषायो में आयेहै। ये द्रव्य तिक्त एंव कटुरसयुक्त होने से कफघ्न है रस, मेद, शुक्र, स्तन्य ये धातु एवं उपधातु तथा आम कफवर्ग के होते है अत कफशामक द्रव्य स्तन्यशोधक आमपाचक शुक्रशोधन एवं लेखन होते है। जाठराग्निवैषम्य के परिणामस्वरूप उत्पन्न अतिसार की दो अवस्थाए होती है आमातिसार एंव पक्वातिसार आमातिसार में दीपन पाचन द्रव्यो का प्रयोग अभीष्ट है एतदर्थ कदु तिक्त एवं उष्णवीर्य द्रव्यों की योजना इन गणो में हुई है यहाँ मुस्ता कुटजबीज यद्यपि शीतवीर्य है। किन्तु तिक्त रस सेवे आमपाचन का कार्य करते है। पक्वातिसार में ग्राही कषाय रस के द्रव्य दिये जाते है।

(14) श्यामादि गण –इस गण के द्रव्य चरक के भेदनीय महाकषाय के सदस्य है। चरक में मुत्रविरेचनीय महाकषाय के समान पुरीषविरेचनीय महाकषाय का पाठ नही है चरक का भेदनीय महाकषाय ही उनका पुरीविरेचनीय महाकषाय है इस गण में सभी प्रकार के विरेचक द्रव्यो का वर्णन है जो पुरीष के संघात का भेदन कर एंव आंन्त्र की गति बढाकर उद्वेष्ठन पूर्वक विरेचन कराते है इस गण में रम्यक (महानिम्ब) जो शीत एवं ग्राही है तथा गुडूची जो त्रिदोषशामक है का विधान महानिव सम्भवतः व्यापद शान्त्यर्थ हुआ है।

(15) ब्रहत्यादि गण—इस गण के द्रव्य चरक के शोथहर, कण्ठय, कण्डूघ्न, अंगमर्दप्रशमन, स्तन्यशोधन और हिक्कानिग्रहण महाकषायो में आये हुए है। इस गण के सभी द्रव्य तिक्तप्रायः होने से पित्त शामक प्रायः द्रव्य उष्णवीर्य होने से वात शामक एवं दोनों से कफ शामक है। इस प्रकार इस गण का प्रयोग पाचन, अरूचि, मूत्रकृच्छ और वेदनाहर में किया जाता है।

(16) पटोलादि गण—इस गण के द्रव्य चरक के स्तन्यशोधन तृष्णानिग्रहण तृप्तिघ्न दाहप्रशमन ज्वरहर कण्डूघ्न आदि महाकषायो में आये हुए है। इस गण के सभी द्रव्य तिक्तप्रायः होने से एवं प्रायः द्रव्य शीतवीर्य होने से कफपित्त शामक उत्तम रक्तप्रसादक एंव रक्तपित्त शामक है। तिक्त रसत्व से यह गण उत्कृष्ट आमपाचक एंव स्तन्यशोधक है शैत्य एंव आमपाचन द्वारा यह गण ज्वर छर्दि आमविष अरूचि में उपर्युक्त है। कफपित्तशामक एंव रक्तपित्त प्रसादक होने से व्रणशोथ कण्डू कुष्ठ एंव त्वक विकारो मे इसका प्रयोग अभीष्ट है।

(17) काकोल्यादि गण— चरकोक्त महाकषाय के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनका जीवनीय महाकषाय पूर्णतः इसमे समाविष्ट है बृहणीय महाकषाय शुक्रजनन महाकषाय स्नेहोपग महाकषाय के द्रव्य इस गण में आये है जो इस गण के जीवन बृहंण कर्मो एवं स्निग्धत्व की पुष्टि करते है। इस गण के प्रायः द्रव्य मधुरस प्राय मधुर विपाकी शीतवीर्य स्निग्धगुणो से युक्त है। इन गुणो के कारण यह गण पित्तवातहर कफकर स्तन्य वृण्य बृहणं जीवन एंव रक्तशोधक है। इल्हण ने जीवन को प्राणधारण एंव बृहणं को शरीरवृद्धिकर कहा है।

(18) ऊषकादि गण —इस गण के प्रायः द्रव्य उष्णवीर्य कटु तिक्त रसयुक्त तीक्ष्ण होने से यह गण कफ एंव मेद का नास करने वाला है। उष्णतीक्ष्ण होने से मूत्रत्सिकाओ में रक्तभार बढ़ाकर तथा वृक्को में शोभ उत्पन्न कर मूत्रस्त्राव बढ़ाते है। तीक्ष्णता से अश्मरी का भेदन एंव शर्करा का विलयन कर अपने मुत्रल कर्म से उसे निकालते भी है। इन्ही गुणो से गुल्मभेदन हेतु भी इन द्रव्यो का प्रयोग विहित है।

(19) सारिवादि गण— इस गण के द्रव्य चरक के दाहप्रशमन वर्ण्य कण्डूघ्न आदि महाकषायो में आये है। इस गण के सभी द्रव्य शीत है।

(20) अजनादि गण— इस गण के द्रव्य कषाय, तिक्त मधुररसयुक्त एंव प्रायः शीतवीर्य है। चरक के शोणितस्थापन महाकषाय में इस गण के द्रव्य आए है।

(21) परूषकादि गण—इस गण के द्रव्य चरक के ज्वरहर हृद्य श्रमहर विरेचनोपग आदि महाकषायो में आये है यह मधूराम्लरसप्राय शीत एंव स्निग्धगुणयुक्त फलो का गण है। मधुर अम्ल शीत एंव स्निग्ध द्रव्य रुचिकर तृष्णाशामक एंव मुत्रल होते है। ये फल वातानुलोमक एंव विरेचनोपग होने से अपान की दुष्टि को दूर करते हुए मूत्रदोषो निवारण में सहायता करते है सुश्रुत ने इस गण को हृद्य भी कहा है। हृद्य शब्द के दो अर्थ है हृदय एवं मन को प्रियद्रव्य तथा हृदय हेतु हितकर द्रव्य मधुराम्ल फलो का प्रथम अर्थ में ग्रहण होता है। द्वितीय अर्थ के संबंध में चरकोक्त यह विधान काफी महत्व रखता है यथा **"हृद्य यत् स्याद्यदौजस्यं स्त्रोतसां यत् प्रसादनम्" च0 सू0 30/14** अर्थात् ओजो वर्धक एवं स्त्रोतोप्रसादक द्रव्य हृद्य होते है। इस गण के द्रव्य मधुर अम्ल शीत स्निग्धत्व से ओजस्कर होते है तथा द्रव्यों के मूत्रल मृदुविरेचक कर्मो के कारण स्त्रोतोशोधन कत्तृत्व भी इस गण में है।

(22,23) प्रियड़वादि एंव अम्बष्ठादि गण—इन गणो के द्रव्य चरक के पुरीष संग्रहणीय मूत्रविरजनीय शोणितस्थापन वर्ण्य इन महाकषायों में विशेषरुप से आये है इन गणों के द्रव्य कषायरस प्रधान रुक्ष एंव शीतवीर्य है इन गुणो से यह गण पित्तशामक रक्तस्तम्भक अस्थिसंधान कर तथा व्रणरोपक है। पक्वातिसार में द्रव पुरीष के स्तंभन एंव धनीकरण की अपेक्षा होती है। इस कार्य हेतु शीत रुक्ष गुरू एंव कषाय द्रव्यों की योजना आवश्यक होती है।

(24) न्यग्रोधादिगण—इस गण के द्रव्य चरक के मूत्रसंग्रहणीय पुरीषसंग्रहणीय पुरीषविरजनीय उदर्दप्रशमन शोणितस्थापन संधानीय छर्दिनिग्रहण आदि महाकषायों में आये है इस गण के द्रव्य कषाय रस प्रधान शीतवीर्य रुक्ष गुरू गुणयुक्त होने से यह गण कफपित्तशामक एंव वातवर्धक है उपर्युक्त गुणो के कारण ये द्रव्य कफ एवं कफवर्गीय मेद शुक्र तथा द्रवत्व को सुखाने वाले है अतः मेदोवृद्धि प्रदर स्त्रावि व्रण तथा श्लैष्मिक विकारो में यह गण उपयुक्त है। इन गुणो से इस गण में

द्रवशोषक एवं स्तम्भक गुण भी आया है अतः अतिसार, श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, बहुमुत्रता, रक्तस्त्राव इनमें भी इन गण की उपादेयता है।

(25) गुड्च्यादिगण–इस गण के द्रव्य तृष्णानिग्रहण एंव दाह प्रशमन महाकषाय में आये है इस गण के द्रव्य तिक्तरसप्राय होने से कफपित्तशामक है। पित्तशामक होने से यह सर्वज्वर दाह तृष्णा में कफशामक होने से अरुचि तथा कफपित्तशामक होने से छल्लास वमन में उपयुक्त होते है।

(26) उत्पलादिगण–इस गण के द्रव्य चरक के मूत्रविरजनीय दाहप्रशमन आदि महाकषायों में आए है। ये द्रव्य तिक्त मधुर कषायरसात्मक एंव शीतवीर्य होने से पित्तशामक रक्तशोधक विषघ्न दाहशामक तृष्णाहर मूर्च्छाहर तथा वमन में उपर्युक्त होते है।

(27) मुस्तादि गण–चरक के लेखनीय महाकषाय के नौ द्रव्य इस गण में है इस गण के द्रव्य चरक के दीपनीय तृप्तिघ्न कण्डुघ्न स्तन्यशोधन श्वासहर आदि महाकषायों में भी आये है इस गण के द्रव्य तिक्त कटु कषायरस एंव उष्णवीर्य भी है। अतः कफहर मेदोहर स्तन्यशोधक दीपन पाचन है तिक्त कषाय रसो की स्त्रावशोषक प्रकृति के कारण विभिन्न योनिविकारो में भी इस गण के द्रव्यों की कार्मुकता सिद्ध है।

(28) त्रिफला–त्रिफला के द्रव्य चरक के कुष्ठघ्न विरेचनोपग कासहर ज्वरहर वयस्थापन आदि महाकषायों में आए है। त्रिफला त्रिदोषहन होते हुए भी कषायरस प्रधानता से कफपित्तघ्न अधिक है। कषाय रसप्रधानता एंव रौक्ष्य से यह स्त्रोतो का शोषक है अतः सभी प्रकार के प्रमेह योनिव्यापदो स्त्रावि कुष्ठ तथा कफावृत्त जष्ठग्नि को कफनाशन द्वारा मुक्ति दिलाने से अग्निमांद्य में भी उपर्युक्त है। त्रिफला की कफपित्तशामक प्रकृति ने उसे नेत्रविकारो में भी उपयुक्त बनाया है विषमज्वर में ज्वर का प्रत्यात्य लक्षण सन्ताप पित्त के कारण एंव चिरकलानुबंधत्व कफदोष के कारण होता है। अतः इसमें भी त्रिफला का प्रयोग अभीष्ट है।

(29) त्रिकटु–त्रिकटु के द्रव्य चरक के दीपनीय शूलप्रशमन तृप्तिघ्न आदि महाकषायो में पठित है ये कटुरस एंव उष्णवीर्य द्रव्य होते है। कटुरस एंव उष्णवीर्य से इस गण के द्रव्य अग्निदीपन करते है।

(30) आमलक्यादि गण–यह गण कषाय कटु रसप्रधान एंव उष्णवीर्य प्रायः दृष्टिगोचर होता है। इन गुणो के कारण यह गण कफघ्न ज्वर का बहुप्रचलित कल्प होता है ज्वर में स्वदेल एंव दाहशामक दोनो कर्मो हेतु इसकी उपादेयता है।

(31) त्रप्वादि गण–सुश्रुत के इस गण में सभी पार्थिव एंव धातु द्रव्य है चरक में इस प्रकार का कोई महाकषाय नही है।

(32) लाक्षादि गण–इस गण के प्रायः द्रव्य चरक के कुष्ठघ्न एंव कण्डूघ्न महाकषायों में आये है यद्यपि इस गण के द्रव्य कषाय तिक्त एंव मधुररस के कहे गये है तथापि इन द्रव्यों में तिक्त कटु कषायत्व अधिक दृष्टि गोचर होता है। जिससे यह गण कफपित्तशामक एंव रक्तप्रसादक बना हुआ है इन गुणो के कारण यह गण विभिन्न कफपैत्तिक विकारो कुष्ठ कण्डू रक्तदुष्टि जन्य अन्यविकारों कृमि में उपयुक्त है।

(33) कनीयपंचमूल–सुश्रुत ने इस गण के द्रव्यों को कषाय तिक्त एंव मधुररसात्मक कहा है। इस गण के सभी द्रव्य चरक के अर्गुवदि तैल के घटक द्रव्यो के रुप में वर्णित है उष्णवीर्य के कारण ये द्रव्य वात का तथा कषाय तिक्त मधुररस से पित्त का शमन करते है। चरक ने इस गण के 4 द्रव्यों को अंगमर्द प्रशमन महाकषाय में स्थान दिया है।

(34) महत पचमूल–इस गण के द्रव्य चरक ने अगुर्वादि तैल के घटक द्रव्यों में गिनाए है उष्णवीर्य एंव तिक्तमधुररस से यह गण कफ एंव वात दोषो का शमन करता है। उष्णवीर्यत्व तिक्तरसप्राय एंव लघु होने से यह गण अग्निदीपक है। अग्नि प्रदीपन का कार्य यह गण दोनो तरह से सम्त्पन्न करता है। साक्षात अग्नि का दीपन एंव अवरोधक कफ को नष्ट करके भी।

दशमूल–चरक का श्वयथुहर महाकषाय इन्ही दस द्रव्यों से बना हुआ है। चरक के शीतप्रशमन अंगमर्दप्रशमन अनुवासनोपग आदि महाकषायों में भी दशमूल के द्रव्य आये हुए है दशमूल के सभी द्रव्य उष्णवीर्य एंव तिक्त कषाय मधुररसात्यक है। वीर्य से यह कफवातशामक है।

(35,36) बल्लीपंचमूल कंटकपंचमूल– चरक के शुक्रशोधन महाकषाय में इस गण के द्रव्य आए है तिक्त रसत्व से शुक्रशोधन हेतु भी ये द्रव्य प्रयुक्त होते है। इस गण के प्रायः द्रव्य मधुररस स्निग्ध गुण शीतवीर्यत्व से वातशामक वृष्य एंव मुत्रल होते है
(37) तृणपंचमूल– तृणपंचमूल के द्रव्य सुश्रुत के ही वीरतर्वादि गण में तथा चरक के स्तन्यजनन एंव मुत्रविरेचनीय महाकषायों में दृष्टिगोचर होते है। चरकोक्त शीतवीर्य द्रव्यों में चन्दनाद्य तेल[9] के द्रव्य इनका समावेश हुआ है ये द्रव्य मधुर प्रायः एंव शीतवीर्य होने से रक्तपित्तशामक एंव मूत्रल है।
सुश्रुत सहितां म संशोधन एंव संशमन[10] की दृष्टि से सात वर्ग वर्णित किये है इनमें प्रथम चार वर्ग दोष संशोधन (उर्ध्वभागहर वर्ग, अधोभागहर वर्ग, अभयतोभागहर वर्ग, शिरोविरेचन वर्ग) तथा अंतिम तीन सशमन (वातसंशमन वर्ग, पित्तसंशमन वर्ग, तथा श्लेष्मसंशमन वर्ग) के अनुसार है। सूत्रस्थान में सुश्रुत ने वामक द्रव्यों के योगो का वर्णन किया है और मदनफल की वमन में श्रेष्ठता का भी वर्णन किया है[11]। सूत्रस्थान में सुश्रुत ने 6 विरेचन द्रव्यों का प्रधान संग्रह एंव विरेचक योग बताए है[12]। चरक संहिता सूत्रस्थान द्वितीय अध्याय तथा विमान स्थान अष्टम अध्याय में संशोधन कर्मो में प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों का उल्लेख किया गया है।

कर्मात्मक वर्गीकरण में वैधर्म्य

आचार्य सुश्रुत ने पहली बार चरक से इतर द्रव्यों के संस्थानिक कर्मो के साथ–साथ उनके दोषात्मक कर्मो का भी वर्णन व उन द्रव्यों के प्रयोग पक्ष का भी वर्णन किया जैसे विदारिगंधादि गण वात+पित्त दोष नष्ट करता है। व उसका प्रयोग राज्यक्ष्मा अंगमर्द उर्ध्व श्वास में करते है। वरुणादि गण कफ+मेद को नष्ट करता है व आभ्यन्तर विद्रधि नाशक है। चक्रपाणि ने भी अपनी टीका में इस आशय को प्रकट किया है "एतेनान्यान्यपि महाकषायाणि वातप्रशमन पित्तप्रशमनादिन्येक कार्य सम्पादकानेक भवन्तीति सूचयति"।[13] सुश्रुत ने 37 गणो के वर्गीकरण में पंच पंचमूलों का वर्णन किया चरक ने भी पचं पंचमूल शब्द प्रयुक्त किया है। परन्तु वृहत, लघु आदि उल्लेख नही है। सुश्रुत ने प्रथम वृहत एवं लघु आदि संज्ञायों का प्रयोग किया। चरक एंव सुश्रुत ने प्रथम तीन पंचमूल (वृहत तृण) तो समान है किन्तु सुश्रुत ने वल्ली व कण्टक पंचमूल स्वीकार किये जबकि चरक ने जीवनीय व मध्यम पंचमूल माने। सुश्रुत के वर्गीकरण में त्रप्वादिगण का वर्णन किया गया है। जहाँ धातुओं का वर्णन है। जबकि चरक ने धातु आदि का वर्णन नही किया। सुश्रुत ने अजनादि गणो मे अंजनो का ऊषकादि गण में तुथ्य–महारस कासीस–उपरस का वर्णन किया चरक में भी गैरिक का वर्णन है।

निष्कर्ष

पचाशत महाकषाय पर सूक्ष्म विचार करने से निम्नकिंत तथ्य प्रस्तुत है। महाकषाय का प्रांरम्भ जीवनीय से तथा अन्त वयः स्थापन से होना महत्वपूर्ण सकेंत है आयुर्वेद का लक्ष्य दीर्घजीवन है जो जीवनीय द्रव्यों के द्वारा वयः स्थापन से संभव है। इसमें शरीर के सभी संस्थाओं से संबध रखने वाले कर्मो का समावेश हुआ है पाचन रक्तवह श्वसन आदि। इन महाकषायों के क्रम में भी एक व्यवस्था का संकेत मिलता है। यथा पंचकर्म से सम्बन्ध गण एक साथ रखे गये है इसी प्रकार शुक्र तथा स्तन्य (धातु उपधातु) से सम्बन्ध एक साथ और मलो (मूत्र–पुरीष) से सम्बन्ध एक साथ रखे गये है। सुश्रुत ने कर्मसाम्यता के आधार पर द्रव्यों का वर्गीकरण किया है रचना साम्यतः के अधार पर भी है जैसे वल्लीपंचमूल कंटकपंचमूल आदि पार्थिव द्रव्यों का प्रचलन चरक की अपेक्षा बढ़ा है। विदारीगंधादि प्रथम गण है अंतिम गण तृण पंचमूल है। सबसे छोटा गण 3 द्रव्यों वाला है त्रिफला त्रिकटु सबसे बड़ा गण एलादि गण है जिसमें की संख्या 26 है। जान्तव द्रव्यों का वर्णन भी आया है एलादि गण में 2 जान्तव द्रव्य त्याघ्रनख व शुक्ति व एक द्रव्य लाक्षादि गण में लाक्षा आया है। चरक मे भी तीन द्रव्यो शुक्रशोधन महाकषाय में समुद्रकेन शोणित स्थापन महाकषाय में मधु व रुधिर का वर्णन है। चरक और सुश्रुत के कर्मात्मक वर्गीकरण में एक अंतर यह प्रतीत होता है कि सम्प्रदाय भेद से चरक और सुश्रुत ने अपने अपने सम्प्रदाय के लिए उपयोगी द्रव्यो तथा वर्गो का विवेचन अधिक किया है। उदाहरणार्थ चरक में पंचकर्म के उपयोगी

तथा सहायक द्रव्यों का तथा वर्गो का विस्तृत विचार किया गया है। वहा सुश्रुत सहिंता में शल्यतंत्र तथा शालाक्य तंत्र में उपयोगी द्रव्यों और वर्गो का वहाँ सुविस्तृत विवेचन किया गया यथा विम्लापन पाचन दारण रोपण आदि। त्रिफला त्रिकटू पंचमूल दशमूल आदि मिश्रक गणो का भी स्पष्ट उल्लेख व सुश्रुत में ही मिलता है यद्यपि मूलिनी फलिनी आदि शब्दो का संकेत चरक मे भी उपलब्ध है।

संदर्भः

1. अग्निवेश; चरक संहिता, टिका आयुर्वेददीपिका रचयिता चक्रपाणिदत्त; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः सूत्रस्थान अध्याय 4।
2. सुश्रुत; सुश्रुत संहिता, टिका निवंध संग्रह रचयिता डल्हण; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः सूत्रस्थान अध्याय 38।
3. अग्निवेश; चरक संहिता, टिका आयुर्वेददीपिका रचयिता चक्रपाणिदत्त; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः विमानस्थान अध्याय 08।
4. अग्निवेश; चरक संहिता, टिका आयुर्वेददीपिका रचयिता चक्रपाणिदत्त; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः सूत्रस्थान अध्याय 4 श्लोक संख्या 20।
5. सुश्रुत; सुश्रुत संहिता, टिका निवंध संग्रह रचयिता डल्हण; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः चिकित्सास्थान अध्याय 17 श्लोक संख्या 16।
6. सुश्रुत; सुश्रुत संहिता, टिका निवंध संग्रह रचयिता डल्हण; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः सूत्रस्थान अध्याय 46 श्लोक संख्या 221।
7. अग्निवेश; चरक संहिता, टिका आयुर्वेददीपिका रचयिता चक्रपाणिदत्त; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः निदानस्थान अध्याय 2 श्लोक संख्या 2।
8. सुश्रुत; सुश्रुत संहिता, टिका निवंध संग्रह रचयिता डल्हण; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः सूत्रस्थान अध्याय 11 श्लोक संख्या 11।
9. अग्निवेश; चरक संहिता, टिका आयुर्वेददीपिका रचयिता चक्रपाणिदत्त; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः चिकित्सास्थान अध्याय 3 श्लोक संख्या 258।
10. सुश्रुत; सुश्रुत संहिता, टिका निवंध संग्रह रचयिता डल्हण; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः सूत्रस्थान अध्याय 39।
11. सुश्रुत; सुश्रुत संहिता, टिका निवंध संग्रह रचयिता डल्हण; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः सूत्रस्थान अध्याय 43।
12. सुश्रुत; सुश्रुत संहिता, टिका निवंध संग्रह रचयिता डल्हण; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः सूत्रस्थान अध्याय 44।
13. अग्निवेश; चरक संहिता, टिका आयुर्वेददीपिका रचयिता चक्रपाणिदत्त; चौखम्बा प्रकाशन वाराणसीः सूत्रस्थान अध्याय 4 श्लोक संख्या 8।